विद्यालयों में शारीरिक दण्ड

डॉ. राम प्रताप गुप्ता

इसी वर्ष, फरवरी माह में कोलकाता के एक स्कूल में प्राचार्य द्वारा एक छात्र को शारीरिक दण्ड दिए जाने पर उसके द्वारा आत्महत्या कर लेने के समाचार ने विद्यालयों में शारीरिक दण्ड पर प्रतिबंध की आवश्यकता को एक बार फिर सामयिक बना दिया है। कानूनी स्थिति जो भी हो, शासकीय और निजी, सभी विद्यालयों में शिक्षकों द्वारा अनुशासन के नाम पर छात्रों को शारीरिक रूप से प्रताड़ित किया जाना आम बात है।

महिला और बाल विकास विभाग द्वारा देश के 13 राज्यों के स्कूली बच्चों से पूछताछ करने पर 63 प्रतिशत छात्रों ने बताया कि उन्हें कभी न कभी प्राचार्य या शिक्षक द्वारा शारीरिक दण्ड दिया गया है। इनमें से 62 प्रतिशत दण्ड की घटनाएं शासकीय स्कूलों में और शेष 38 प्रतिशत निजी स्कूलों में हुई थीं। जब तक कोई गंभीर दुष्परिणाम न निकले, छात्र द्वारा अपेक्षित शैक्षणिक प्रगति न दिखाने या संस्था का अनुशासन तोड़ने पर शारीरिक दण्ड दिए जाने को पालकों की भी मौन सहमति है। कई बार तो विद्यालय से निरंतर शिकायतें मिलने पर परेशान पालक खुद भी अपने बच्चों को शारीरिक दण्ड देते हैं। ऐसे में स्कूल तथा घर, दोनों जगहों पर शारीरिक प्रताड़ना के चलते छात्र हमेशा के लिए स्कूल छोड़ देना ही उचित समझते हैं। पालक एवं अध्यापक अक्सर छात्रों को उद्दण्ड, अनुशासनहीन जैसे विशेषणों से विभूषित करते हैं, जिसका उनके मस्तिष्क पर स्थाई दुष्प्रभाव पड़ता है।

कभी हमारे न्यायालय भी विद्यालय में अनुशासन बनाए रखने तथा विद्यार्थी की शैक्षणिक प्रगति के लिए शारीरिक दण्ड को उचित मानते थे। सन् 1964 में कोलकाता उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा था कि इंग्लैंड के कानूनों के अनुसार भी जब छात्र विद्यालय में होता है तो अध्यापक छात्र के पालक का स्थान ले लेता है और उसे पालक के अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। छात्र को शारीरिक दण्ड देने का अधिकार भी उसे प्राप्त हो जाता है। इसी तर्क के आधार पर उसने छात्र को छड़ी से दण्डित करने पर निचले न्यायालय द्वारा अध्यापक को दिए गए दण्ड के फैसले को अनुचित माना था।

विगत वर्षों में न्यायालय के इस दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है। अब न्यायालय का सोचना है कि शारीरिक दण्ड बच्चों के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है और यह बच्चों के अधिकारों का हनन है। बच्चों के अधिकार के संरक्षण हेतु बनाए गए आयोग ने हाल में घोषणा की है कि भारतीय दण्ड संहिता के उन प्रावधानों में संशोधन किया जाएगा जो बच्चों को शारीरिक दण्ड को उचित मानते हैं।

1 दिसम्बर 2000 को दिए गए एक निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि शारीरिक दण्ड भारतीय संविधान की धारा 14 (कानून के समक्ष समानता) और धारा 29 (जीवन एवं निजी स्वतंत्रता का अधिकार) का उल्लंघन है। उसने राज्यों को निर्देश दिया था कि वे देखें कि शालाओं में बच्चों को शारीरिक दण्ड न दिया जाए और वे भयमुक्त एवं स्वतंत्र वातावरण में शिक्षा प्राप्त करें। परन्तु इस निर्णय के एक दशक बाद

भी हमारे विद्यालयों में अनुशासन के नाम पर और समुचित अध्ययन करने की दिशा में बाध्य करने के लिए छात्रों को शारीरिक दण्ड दिया जाना आम बात है।

आज की व्यवस्था में शिक्षकों को इस बात का तो प्रशिक्षण दिया जाता है कि वे छात्रों के समक्ष विषय को किस तरह प्रस्तुत करें कि वे इसे आसानी से ग्रहण कर सकें परन्तु छात्रों के भावनात्मक पहलुओं को समझने की दिशा में कोई प्रशिक्षण नहीं दिया जाता। शिक्षक छात्रों को विषयों का ज्ञान तो देते हैं परन्तु उनकी व्यवहारिक समस्याओं को समझने और हल करने का कोई प्रयास नहीं करते।

किशोर आयु में छात्र-छात्राओं में अनेक शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन आते हैं, परन्तु हमारे विद्यालय इन परिवर्तनों को न तो समझने में उनकी मदद करते है और न स्वयं समझने का प्रयास करते हैं। ऐसे में उनकी समस्याओं से उत्पन्न व्यवहार सम्बंधी परिवर्तनों को अनुशासनहीनता करार देकर उन्हें दण्डित करने का आसान तरीका अपना लेते हैं। अनुशासनहीनता के मामले में छात्रों को दण्डित करने के स्थान पर शिक्षकों को उनके भावना जगत में आ रही समस्याओं को समझने का प्रयास करना चाहिए। इसके लिए छात्रों एवं शिक्षकों के बीच खुले संवाद की स्थिति कायम की जानी चाहिए। शाला प्रशासन में भागीदारी देकर छात्रों को यह समझने का अवसर देना चाहिए कि व्यवस्था संचालन के लिए कोई नियम क्यों बनाया गया? उनकी भागीदारी के साथ ही यह तय भी किया जाना चाहिए कि किसी नियम के तोड़े जाने पर छात्र से कौन-कौन सी सुविधाएं छीनी जाएंगी।

शिक्षकों को किशोरावस्था में छात्रों में आ रहे शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तनों की समझ के लिए विशेष प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। अगर ऐसी समझ विकसित हो सकी तो किसी छात्र द्वारा अनुशासन तोड़ने पर शिक्षक स्थिति को समझने का प्रयास करेगा। यह भी समझने का प्रयास करना चाहिए कि क्या छात्र उद्दंडता का व्यवहार कर छात्रों के बीच अपनी धाक जमाना चाहता है अथवा वह शिक्षक या स्कूल प्रशासन के किसी कदम से आहत है। अगर शिक्षकों में छात्रों की भावनाओं की समझ भी विकसित की जाती है तो कक्षा में ऐसा माहौल विकसित होगा जिसमें छात्र नया ज्ञान भी आसानी से ग्रहण कर सकेंगे।

शाला प्रमुखों को छात्रों की भावनाओं को समझने का प्रयास करना होगा। अनुशासन तोड़ने की प्रवृत्ति वाले छात्र को उद्दण्ड, ज़िद्दी, अनुशासनहीन, आलसी जैसे विशेषणों से संबोधित करने से उसके साथियों के बीच उसकी प्रतिष्ठा कम होती है और उसमें विद्रोह एवं प्रतिरोध की भावना जाग्रत होती है। बार-बार की शिकायतों से परेशान होकर माता-पिता भी उसे दोष देने लगते हैं। इससे उसके व्यवहार में सुधार की जगह बिगड़ाव आने लगता है। इसका दुष्परिणाम अंततः स्वयं छात्र और उसके माता पिता को ही भुगतना पड़ता है। छात्र द्वारा किया जाने वाला असामान्य व्यवहार ही इस बात का प्रमाण है कि उसे मदद की ज़रूरत है।

समाज प्रायः किसी विद्यालय में प्रदत्त शिक्षा की श्रेष्ठता का आकलन उसके परीक्षा परिणामों से करता है। स्वयं विद्यालय भी पालकों, विद्यार्थियों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए इन्हीं परिणामों का प्रचार-प्रसार करते हैं। विद्यालय और पालक दोनों ही भूल जाते हैं कि शिक्षा का उद्देश्य छात्र की केवल शैक्षणिक क्षमता का विस्तार नहीं, बल्कि छात्र के व्यक्तित्व का समग्र विकास होता है। लेकिन आज के विद्यालय शिक्षा के इस उद्देश्य को भुलाकर ऐसे उपायों पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं जिनसे परीक्षा परिणाम बेहतर हो सकें। इस प्रक्रिया में छात्र का भावना पक्ष तो पूरी तरह उपेक्षित हो जाता है। शिक्षा में बच्चों का श्रेष्ठ परिणाम नहीं, उनमें भावनात्मक परिपक्वता विकसित करने का लक्ष्य लेकर चलना होगा, व्यक्तित्व का समग्र विकास भी तभी संभव होगा।

जब कोई शिक्षक कक्षा में अनुशासन स्थापित करने के लिए छात्रों की भावनाओं का दमन करता है तो उसकी स्थिति एक आतंकवादी जैसी हो जाती है। हमारा संविधान हम सबको जीवन का अधिकार देता है, सम्मानपूर्वक जीवन का अधिकार इसमें निहित है। जब बच्चे को शारीरिक प्रताड़ना दी जाती है तो उसके संवैधानिक अधिकार का हनन होता है, यह तथ्य हमारी शैक्षणिक व्यवस्था को अच्छी तरह से आत्मसात् करना होगा।

कुल मिलाकर निष्कर्ष यही निकलता है कि शाला में अनुशासनहीनता अधिकांश मामलों में छात्रों की भावनाओं के दमन का परिणाम होती है। शाला के हर छात्र को अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के समुचित अवसर मिलना ही चाहिए। इसकी बजाय जब उसे किसी व्यवहार के लिए शारीरिक दण्ड दिया जाता है तो उसे भारी आघात पहुंचता है और वह आत्महत्या जैसा चरम कदम भी उठा सकता है। अगर स्कूल प्रशासन छात्रों की भावनाओं को समुचित दिशा देने में सफल होता है तो उसे तमाम तरह के प्रतिकूल परिणामों वाले शारीरिक दण्ड देने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। अगर किसी शाला में छात्रों को अनुशासित करने के लिए शारीरिक दण्ड दिया जाता है तो आवश्यकता छात्र के व्यवहार में सुधार की नहीं बल्कि शाला की प्रशासन प्रणाली और सोच में सुधार की है। ***(स्रोत फीचर्स)***